30 प्रतिशत व सूखी भूमि का 25 प्रतिशत निर्धारित की गई। जम्मू व कश्मीर में लगान की दर 25 प्रतिशत से 50 प्रतिशत तक है। शेष सभी राज्यों में यह दर 25 प्रतिशत से अधिक नहीं है।

(2) **पट्टे की सुरक्षा**—राज्यों ने पट्टे की सुरक्षा के सम्बन्ध में अधिनियम पारित किए हैं। इन अधिनियमों को बनाते समय इस बात का ध्यान रखा गया है कि (i) बड़े पैमाने पर पट्टेदारों की बेदखली न हो (ii) भूमि के मालिकों को केवल स्वयं काश्त के लिए ही भूमि पुनः प्राप्त करने की अनुमति हो (iii) भूमि को पुनः प्राप्त करने पर पट्टेदार के पास निश्चित न्यूनतम भूमि अवश्य रहने दी जाए। इस प्रकार बिहार, गुजरात, केरल, मध्य प्रदेश, कर्नाटक, उड़ीसा, राजस्थान, हिमाचल प्रदेश व महाराष्ट्र के अधिनियमों में यह व्यवस्था है कि भूमिपति को पट्टेदार के पास पट्टे वापस लेते समय कुछ भूमि अवश्य छोड़नी होगी। आन्ध्र प्रदेश व चेन्नई में सीमा निर्धारण के स्तर तक भूमि का पुनः ग्रहण करने का अधिकार भूमि के मालिक को दिया गया है। पंजाब व असम के अधिनियमों में राज्य ने पट्टेदार को अन्यत्र भूमि दिलाने का उत्तरदायित्व लिया है।

(3) **पट्टेदारों को स्वामित्व अधिकार**—कई राज्यों में पट्टेदारों को स्वामित्व अधिकार दिलाने के लिए वैधानिक व्यवस्था की गई है जिसके अन्तर्गत पट्टेदार निर्धारित क्षतिपूर्ति के बाद भूमि पर स्वामित्व अधिकार प्राप्त कर सकता है। इस सम्बन्ध में अभी आन्ध्र प्रदेश, बिहार, असम, हरियाणा, जम्मू एवं कश्मीर, पंजाब व असम में ऐसे अधिनियम नहीं है।

**पट्टेदारी व्यवस्था में सुधार का प्रभाव**—पट्टेदारी व्यवस्थाओं में सुधार के अच्छे परिणाम निकले हैं जिससे 1 करोड़ 24 लाख 20 हजार काश्तकारों को लाभ हुआ है जिन्हें 66.17 लाख एकड़ जमीन पर मालिकाना अधिकार दिए गए हैं।[1]

### (III) जोतों की अधिकतम सीमाओं का निर्धारण (Ceiling of Holdings)

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद भूमि सुधार कार्यक्रमों के अन्तर्गत जोतों की अधिकतम सीमा का निर्धारण किया गया है। ऐसा करने के चार उद्देश्य हैं—(1) बड़े भूखण्डों को उचित आकार के खण्डों में बदलना जिससे कि उनका प्रबन्ध उचित प्रकार से हो सके तथा उत्पादन बढ़ाया जा सके (2) अधिशेष (Surplus) भूमि को भूमिहीनों में बांटकर सामाजिक न्याय करना (3) अधिक व्यक्तियों को रोजगार सुविधाएं उपलब्ध कराना एवं (4) अधिशेष बंजर भूमि पर कृषकों, कारीगरों व शिल्पकारों को घर बनाने की सुविधा देना।

**भूमि सुधार पैनल की रिपोर्ट** के अनुसार, ''सभी संसाधनों में भूमि की पूर्ति सबसे अधिक सीमित है किन्तु उसको प्राप्त करने वालों की संख्या बहुत अधिक है। अतः कुछ विशेष दशाओं को छोड़कर यह अन्यायपूर्ण होगा कि कोई एक व्यक्ति भूमि के किसी एक बड़े भाग का शोषण करता रहे। यही नहीं, भारत के वर्तमान सामाजिक और राजनीतिक वातावरण को देखते हुए भी भूमि का समान वितरण आवश्यक है।'' विभिन्न राज्यों में जोतों की सीमा निम्न प्रकार है :

आन्ध्र प्रदेश 4.1 से 21.9 हेक्टेयर, असम 6.7 हेक्टेयर, बिहार 6.1 से 18.2 हेक्टेयर, गुजरात 4.1 से 21.9 हेक्टेयर, हरियाणा 7.3 से 21.8 हेक्टेयर, हिमाचल प्रदेश 4.1 से 28.3 हेक्टेयर, जम्मू व कश्मीर 3.6 से 9.2 हेक्टेयर, कर्नाटक 4.1 से 21.9 हेक्टेयर, केरल

1 **भारत**, 1999, पृ. 454.

4.9 से 6.1 हेक्टेयर, मध्य प्रदेश 7.3 से 21.9 हेक्टेयर, उड़ीसा 4.1 से 18.2 हेक्टेयर, पंजाब 7 से 20.5 हेक्टेयर, राजस्थान 7.3 से 70.8 हेक्टेयर, तमिलनाडु 4.9 से 24.3 हेक्टेयर, त्रिपुरा 4 से 12 हेक्टेयर, उत्तर प्रदेश 7.3 से 18.3 हेक्टेयर व पश्चिमी बंगाल 5 से 7 हेक्टेयर।

लेकिन अभी हाल ही में केन्द्रीय सरकार ने राज्यों को सलाह दी है कि वे अधिकतम सीमाओं का पुनः निर्धारण करें। केन्द्रीय सरकार ने सुझाव दिया है कि अधिकतम सीमा इस प्रकार रखें—सिंचित क्षेत्र जिसमें दो फसलें होती हैं 5 हेक्टेयर, सिंचित क्षेत्र जिसमें एक फसल होती है 7.5 हेक्टेयर, व असिंचित क्षेत्र 12 हेक्टेयर।

**कार्यक्रम की प्रगति**—अधिकतम जोत सीमा सम्बन्धी कानूनों के फलस्वरूप अब तक 73.74 लाख एकड़ भूमि को फालतू घोषित किया गया है। इसमें से 53.05 लाख एकड़ भूमि को वितरित किया जा चुका है।

**अधिकतम जोत सीमा-निर्धारण के पक्ष में निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किये जाते हैं जिन्हें अधिकतम जोत सीमा-निर्धारण के लाभ भी कहते हैं :**

(1) **असमान वितरण में कमी**—अधिकतम जोत निर्धारण से भूमि के असमान वितरण में कमी होती है। (2) **समाजवादी अर्थव्यवस्था की स्थापना में सहायक**—यह नियम केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति को हतोत्साहित करते हैं और समाजवादी अर्थव्यवस्था की स्थापना में सहायता देते हैं तथा राजनीतिक जागृति की आकांक्षाओं को पूरा करते हैं। (3) **सहकारी कृषि को प्रोत्साहन**—बड़ी-बड़ी जोतें समाप्त होने से समानता का वातावरण पैदा होता है जिसमें कृषकों में पारस्परिक सहयोग का विकास होता है जो अन्त में सहकारी कृषि को प्रोत्साहन देता है। (4) **रोजगार में वृद्धि**—अधिकतम जोत नियमों के लागू होने से जोत लघु व मध्यम प्रकार की हो जाती है जिसमें यन्त्रीकरण से कृषि करने की सम्भावनाएं कम हो जाती हैं जिसका परिणाम यह होता है कि श्रम-प्रधान तकनीकों का प्रयोग बढ़ जाता है जिससे रोजगार सम्भावनाओं में वृद्धि हो जाती है। (5) **गहन खेती**—अधिकतम जोत नियम एक व्यक्ति के पास भूमि की मात्रा को कम करते हैं जिसके फलस्वरूप एक कृषक आय बढ़ाने के लिए गहन खेती करने को प्रोत्साहित होता है। (6) **चकबन्दी को प्रोत्साहन**—अधिकतमजोतनिर्धारण नियमों के कारण जोतों का आकार छोटा हो जाता है जिससे चकबन्दी कार्यक्रम को प्रोत्साहन मिलता है। (7) **कृषि आय का समान वितरण**—अधिकतम जोत नियम कृषि आय में समानता लाते हैं। (8) **अधिक उत्पादन**—अधिकतम जोत सीमा-निर्धारण से कृषि उत्पादन को प्रोत्साहन मिलता है। गहन खेती की मात्रा बढ़ती है। इससे कृषि उत्पादन बढ़ता है। (9) **वर्ग संघर्ष में कमी**—भूमि की अधिकतम सीमा निर्धारित करने से वर्ग संघर्ष में कमी होती है जिससे ग्रामीण जनता में एक-दूसरे के प्रति द्वेष की भावना समाप्त होती है। (10) **भूमिहीन कृषकों को लाभ**—भूमि की सीमा के निर्धारण के फलस्वरूप सरकार को जो भूमि बड़े किसानों से मिलती है उसे वह भूमिहीन कृषकों में बांट देती है। इससे उनको लाभ होता है।

**अधिकतम जोत सीमा-निर्धारण के विपक्ष में निम्न तर्क प्रस्तुत किए जाते हैं जिन्हें अधिकतम जोत सीमा-निर्धारण नियमों की हानियां या अवगुण भी कहते हैं :**

(1) **बड़े पैमाने पर कृषि करने के लाभों से वंचित**—सबसे प्रमुख एवं पहला तर्क यह दिया जाता है कि अधिकतम जोत निर्धारण कानून बड़े खेतों को छोटे-छोटे खेतों में बदल

देता है जिसके परिणामस्वरूप समाज बड़े पैमाने पर कृषि करने के लाभों से वंचित रह जाता है। [खेत प्रबन्ध (Farm Management) के अध्ययनों से यह बात स्पष्ट हो चुकी है कि छोटे खेतों की उत्पादकता बड़े खेतों की तुलना में अधिक होती है। साथ ही बड़े पैमाने पर कृषि करने से प्राप्त होने वाले लाभों को तो चकबन्दी व सहकारी खेती जैसे उपायों को अपनाकर प्राप्त किया जा सकता है।]

(2) **एक-सी सीमा-निर्धारण में कठिनाई**—भूमियों की उर्वरा शक्ति तथा उस पर सिंचाई सुविधाएं भिन्न-भिन्न हैं। साथ ही भूमियों की विभिन्न श्रेणियां भी हैं। अतः एक व्यावहारिक कठिनाई सामने आती है कि सभी क्षेत्रों में कृषि भूमि की एक-सी अधिकतम सीमा निर्धारित नहीं की जा सकती है। [यह आपत्ति उचित है। विभिन्न क्षेत्रों की भूमियों की उर्वरा शक्ति एवं सिंचाई सुविधाओं को ध्यान में रखकर सीमाएं निश्चित की जा सकती हैं जो भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में लिए भिन्न-भिन्न हो सकती हैं। भारत में इसी बात को ध्यान में रखा गया है।]

(3) **कृषि एवं गैर-कृषि आयों में विषमताएं**—अधिकतम जोत सीमा अधिनियमों के सम्बन्ध में एक तर्क यह दिया जाता है कि यदि भूमि की अधिकतम सीमा निर्धारित की जाती है तथा गैर-कृषि भूमि जैसी गहरी भूमि की कोई सीमा निर्धारित नहीं की जाती है तो इससे आयों में विषमताएं पैदा हो जाती हैं जो उचित नहीं है। [इस सम्बन्ध में शहरी भूमि सम्पत्ति अधिनियम कुछ अन्य राज्यों में लागू है, जबकि कुछ राज्य इस ओर कदम उठा रहे हैं। इस प्रकार यह आपत्ति भी निरर्थक हो जाती है।]

(4) **भूमिहीन कृषकों की समस्या का समाधान न होना**—सरकारी आंकड़ों के अनुसार भारत में 7.5 करोड़ भूमिहीन कृषक हैं[1] जिन्हें अधिकतम जोत सीमा अधिनियमों के लागू होने से 98.5 लाख एकड़ भूमि प्राप्त हो सकती है। इस प्रकार भूमिहीन कृषकों की बड़ी संख्या होने के कारण उनकी समस्या का उचित समाधान नहीं हो सकता है। [यह आपत्ति उचित है कि इस समस्या का समाधान नहीं हो सकता है, लेकिन अधिकतम जोत सीमा अधिनियमों से कुछ भूमिहीन कृषकों की समस्या तो हल हो ही जाएगी जिससे आर्थिक विषमता कम करने में मदद मिलेगी। इस प्रकार यह आपत्ति निरर्थक हो जाती है।]

(5) **विपणन योग्य अधिशेष की कमी**—अधिकतम जोत सीमा अधिनियम लागू होने से खेत छोटे-छोटे हो जायेंगे जिससे कृषक के पास विपणन योग्य अधिशेष कम रहेगा। [यह तर्क उचित प्रतीत होता है। नियमों के लागू होने से पहले जितनी भूमि जोती जाती है उतनी ही नियमों के लागू होने के बाद भी जोती जाएगी। अतः उत्पादन में कोई कमी नहीं होगी, लेकिन पहले जो कृषक बाजार में क्रय करके खाद्य पदार्थ खाते थे वे अब स्वयं उत्पादित करके अपने पास रख लेंगे। इससे विपणन योग्य अधिशेष में कमी होगी।]

(6) **क्षतिपूर्ति की रकम**—अधिकतम जोत सीमा के निर्धारण के फलस्वरूप यदि किसान से अतिरिक्त (Surplus) भूमि ली जाएगी तो उसे क्षतिपूर्ति देनी होगी जिसकी रकम करोड़ों व अरबों रुपयों में होगी जिसे राज्य सरकारें देने में कठिनाई महसूस करेंगी। [इस तर्क में कोई वजन नहीं है। सरकार का काम जनहित में कार्य करना है।]

(7) **असन्तोष में वृद्धि**—यदि अधिकतम सीमा निर्धारित की जाती है तो इससे बड़े किसानों में असन्तोष होगा जो इस प्रजातान्त्रिक युग में उचित नहीं है। साथ ही एक गांव

1 *Census of India*, 1991.

एक से भूमि लेकर दूसरे को देने में भी बैर व असन्तोष में वृद्धि होगी। [इसमें कुछ वजन है लेकिन यह काम किसान के कहने पर नहीं हुआ। अतः इसका प्रश्न नहीं उठता।]

(8) **अन्य तर्क**—इस सम्बन्ध में कुछ अन्य तर्क भी प्रस्तुत किए जाते हैं, जैसे—(i) भारत में भूमि का अभाव है। अतः इस प्रकार के नियमों से कोई विशेष लाभ नहीं होगा। (ii) बड़ी जोतों को छोटी-छोटी जोतों में बांटने का कार्य सरल नहीं है। (iii) जोत की अधिकतम सीमा निम्न स्तर पर रखने से बहुत छोटे खेत हो सकते हैं जो आधुनिक प्रकार से खेती करने में कठिनाई प्रस्तुत कर सकते हैं। [यह सभी तर्क ऐसे हैं जिनमें कोई विशेष वजन नहीं है।]

**अधिकतम जोत सीमा-निर्धारण कार्यक्रम का मूल्यांकन**

कृषि जोतों पर अधिकतम सीमा लागू करने हेतु प्रावधान पहली पंचवर्षीय योजना के प्रारम्भ से ही किए गए हैं जिसके अनुसार अनेक राज्यों ने कानून बनाये, लेकिन इनमें एकरूपता नहीं थी। अतः 1972 में राज्यों के परामर्श से भारत सरकार द्वारा इस सम्बन्ध में राष्ट्रीय मार्गदर्शी सिद्धान्त जारी किए गए जिससे राज्यों के कानूनों में कुछ हद तक एकरूपता आई है। इस समय नगालैण्ड, मेघालय, अरुणाचल प्रदेश व मिजोरम, अण्डमान और निकोबार द्वीपसमूह तथा गोवा, दमन और दीव राज्यों व केन्द्र-शासित प्रदेशों को छोड़कर सभी राज्यों व केन्द्र-शासित प्रदेशों में अधिकतम जोत सीमा नियम लागू हैं।

सितम्बर, 1998 तक 73.74 लाख एकड़ क्षेत्र को फालतू घोषित किया गया है। इसमें से 65.11 लाख एकड़ क्षेत्र को कब्जे में लिया जा चुका है जिसमें से 53.05 लाख एकड़ भूमिहीन कृषि श्रमिक परिवारों तथा अन्य पात्र वर्गों के लोगों में वितरित कर दी गई है।[1] जोत की अधिकतम सीमा सम्बन्धी कानूनों को लागू करने से जो अतिरिक्त भूमि प्राप्त हुई। वह कुल खेती योग्य भूमि का केवल 1.5 प्रतिशत भाग थी। इसे निर्धनता-रेखा के नीचे जीवन बसर करने वाले केवल 3.5 प्रतिशत लोगों में ही वितरित किया जा सका। यह भूमि हल्के किस्म की थी तथा इसे कृषि योग्य बनाने के लिए काफी साधनों की आवश्यकता थी। अधिकतर प्रत्येक लाभग्राही को इस प्रयत्न से 0.5 हेक्टेयर से भी कम जमीन प्राप्त हुई जिससे परिवार का गुजर होना भी कठिन था।[2]

(IV) **कृषि का पुनर्गठन** (Reorganisation of Agriculture)

भूमि सुधार कार्यक्रमों के अन्तर्गत भूमि का पुनर्गठन भी किया गया है जिसके लिए तीन उपायों को काम में लिया गया है : (1) चकबन्दी, (2) सहकारी खेती, (3) भूदान, व (4) भूस्वामित्व का रिकार्ड।

(1) **चकबन्दी**—चकबन्दी वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा ''स्वामित्वधारी कृषकों को उनके इधर-उधर बिखरे हुए खेतों के बदले में इसी किस्म के कुल उतने ही आकार के एक या दो खेत लेने के लिए राजी किया जाता है।'' इसमें एक कृषक के बिखरे हुए खेतों को एक स्थान पर दे दिया जाता है। यह चकबन्दी दो प्रकार से की जा सकती है—(i) ऐच्छिक चकबन्दी व (ii) अनिवार्य चकबन्दी। इस समय ऐच्छिक चकबन्दी गुजरात, मध्य प्रदेश,

[1] Govt. of India, Ministry of Rural Area & Employment, Deptt. of Rural Employment & Poverty Elimination & Rural Development, *Annual Report*, 1998-99, p. 77-78.

[2] R.C. Choudhary & S. Rajakutty (edi), *Fifty Years of Rural Development in India : Retrospect and Prospect*, Vol. I, (1998), p. 158.

पश्चिमी बंगाल में लागू है। आन्ध्र, अरुणाचल, मिजोरम, मणिपुर, मेघालय, त्रिपुरा, नागालैण्ड, तमिलनाडु व केरल में चकबन्दी सम्बन्धी कानून नहीं है, लेकिन शेष सभी राज्यों में अनिवार्य चकबन्दी सम्बन्धी कानून लागू हैं।

उपर्युक्त नौ राज्यों को छोड़कर शेष सभी राज्यों में चकबन्दी कानून लागू हैं जिनके अन्तर्गत चकबन्दी की जा रही है। पंजाब व हरियाणा में चकबन्दी कार्य पूरा किया जा चुका है। उत्तर प्रदेश के पश्चिमी भाग में यह कार्य पूरा हो चुका है। शेष राज्यों में अभी गति आना बाकी है। अब तक देश भर में 640.81 हेक्टेयर भूमि की चकबन्दी की जा चुकी है।

(2) **सहकारी खेती**—सहकारी खेती से अर्थ कृषकों के द्वारा सहकारिता के सिद्धान्तों के आधार पर संयुक्त रूप से कृषि करने से है। भारत में सभी भूमि सुधारों का अन्तिम लक्ष्य सहकारी ग्रामीण अर्थव्यवस्था की स्थापना करना है। इसलिए पंचवर्षीय योजनाओं में सहकारी खेती पर काफी जोर दिया गया है। इस समय देश में लगभग 9,700 सहकारी समितियां कार्य कर रही हैं जिनके पास 5.7 लाख हेक्टेयर भूमि है तथा जिसके सदस्यों की संख्या 3.25 लाख है।

(3) **भूदान**—भूदान से आशय—यह भूमि सुधार कार्यक्रम ऐच्छिक है और इसके जन्मदाता आचार्य विनोबा भावे थे। ''यहां भूदान से अर्थ स्वेच्छा से भूमि के दान से है।'' इसके उद्देश्य बताते हुए आचार्य भावे ने एक बार कहा था कि यह ''न्याय तथा समानता पर आधारित है कि भूमि में सभी का अधिकार है। इसलिए हम भेंट में भूमि की भीख नहीं मांगते हैं, बल्कि उस भाग की मांग करते हैं जिनमें निर्धनों का न्यायपूर्ण हक है।''

**प्रगति**—इस भूदान आन्दोलन की शुरूआत 18 अप्रैल, 1951 को तेलंगाना (आन्ध्र प्रदेश) के पोचमपल्ली नामक गांव में हुई थी जहां आचार्य भावे के समक्ष एक हरिजन ने यह समस्या रखी कि उसके साथियों के पास खेती करने के लिए भूमि नहीं है। इसी अवसर पर आचार्य भावे के सुझाव पर एक कृषक श्री रामचन्द्र रेड्डी ने 70 एकड़ भूमि इस प्रकार के हरिजनों को देने की घोषणा की। तभी से यह आन्दोलन चलाया गया। आचार्य भावे ने अगले पांच वर्षों में 5 करोड़ एकड़ भूमि इस प्रकार एकत्रित करने का लक्ष्य पूरा करने का संकल्प किया था, लेकिन अभी तक कुल 39.16 लाख एकड़ भूमि ही प्राप्त की जा सकी, इसमें से 21.75 लाख एकड़ भूमि ही वितरित की जा सकी है। आन्दोलन के सूत्रधार श्रीभावे की मृत्यु हो जाने के कारण अब इस आन्दोलन में कोई प्रगति होने की सम्भावना प्रतीत नहीं होती है।

(4) **भूस्वामित्व का रिकार्ड**—भूमि सुधार कार्यक्रम के अन्तर्गत भूस्वामित्व के रिकार्ड के अद्यतन (up-to-date) करने व उसको उचित प्रकार से रखने के लिए भी प्रयास किए गए हैं। आन्ध्र, हरियाणा, जम्मू एवं कश्मीर, गुजरात, पंजाब, राजस्थान, केरल, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र व पश्चिमी बंगाल के रिकार्ड अद्यतन हैं। जबकि शेष राज्यों में भी इन्हें अद्यतन किया जा रहा है।

**समीक्षा**—भारत में भूमि सुधार की दृष्टि से सर्वप्रथम जमींदारी व्यवस्था को समाप्त किया गया। सोचा यह गया कि ऐसा करने से 'मध्यस्थों' के हितों को समाप्त किया जा सकेगा और किसानों के राज्य के साथ प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित किये जा सकेंगे। लेकिन जमींदारी उन्मूलन से किसानों के एक समरूप वर्ग का निर्माण नहीं हो पाया जो कि देश के सभी भागों में

...समान आकार के खेतों को स्वयं अपने परिवार के सदस्यों की सहायता से ... इसका कारण यह था कि यहां किसान के अन्तर्गत एक ओर वे छोटे भू-स्वामी ... जो अपने परिवार की सहायता से ही खेती करते हैं, तो दूसरी ओर वे बड़े भू-स्वामी ... काश्तकारों को किराये पर भूमि जोतने को देते हैं। जमींदारी उन्मूलन से बटाईदारी ... और किराये पर लेकर भूमि जोतने के विभिन्न प्रकारों का प्रचलन समाप्त नहीं हुआ। ... इससे भूमिहीन श्रमिकों के एक बहुत बड़े वर्ग की स्थिति में भी कोई सुधार नहीं ... हो सका।

जमींदारी उन्मूलन के उपरान्त भी जब कृषिक क्षेत्र में पाई जाने वाली असमानताओं ... नहीं किया जा सका तो विभिन्न राज्यों में भूमि सुधार की दृष्टि से सन् 1950 के ... कई अधिनियम पारित किये गए। इनके प्रमुखतः दो लक्ष्य थे। **प्रथम**, काश्तकारी ... के विभिन्न स्वरूपों को या तो समाप्त करना या नियन्त्रित करना और **द्वितीय**, ... के पास भूमि की अधिकतम सीमा निर्धारित करना। ऐसा करने से एक ओर बड़े ... भू-स्वामियों के पास और अधिक भूमि केन्द्रित नहीं हो पायेगी और दूसरी ओर जिनके पास ... निर्धारित सीमा से अधिक मात्रा में भूमि है, वह भूमिहीनों में बांटने को उपलब्ध हो ... इन अधिनियमों में भूमिहीन श्रमिकों की समस्या पर उतना ध्यान नहीं गया जितना ... काश्तकारों एवं बटाईदारों की समस्या पर। इसका मुख्य कारण कृषि श्रमिकों की समस्या ... जटिलता है।

जमींदारी उन्मूलन के बाद भी कृषिक समस्याएं किस प्रकार बनी रहीं, इस सम्बन्ध में ... बसु तथा **भट्टाचार्य**[1] ने पश्चिम बंगाल तथा तमिलनाडु के उदाहरणों द्वारा बताया है। यहां ... जमींदारी की समाप्ति के बाद भी बटाईदारों, जो विभिन्न जिलों में खेती किए जाने वाले क्षेत्र ... 25 से 46 प्रतिशत भाग पर कार्य कर रहे थे, की स्थिति में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं ... क्योंकि उनकी काश्तकारी की शर्तें असुरक्षित प्रकार की थीं। वे खेतों पर जो कुछ उत्पादन ... करते थे, उसका अधिकांश भाग भू-स्वामी को चला जाता था। साथ ही जहां एक ओर थोड़े से ... भू-स्वामी थे, वहां दूसरी ओर बहुत अधिक भूमिहीन लोग थे। 'पश्चिम बंगाल भूमि सुधार, ... अधिनियम, 1956' के द्वारा काश्तकारी की शर्तों को स्पष्ट कर काश्तकारों को सुरक्षा प्रदान ... की गई। इसके अतिरिक्त इसी अधिनियम के द्वारा भूमि की उच्चतम सीमा 25 एकड़ निर्धारित ... की गई।

**आन्द्रे बिताई**[2] बताया कि तमिलनाडु के तंजौर जिले में जमींदारी व्यवस्था की अनुपस्थिति ... में कृषक सम्बन्धों में काफी असमानताएं पाई जाती हैं। पूर्वी तंजौर में एक ओर कुछ ... भू-स्वामियों के पास तो सैकड़ों एकड़ भूमि है जबकि दूसरी ओर भूमिहीन श्रमिकों का एक ... वर्ग है। काश्तकारों को यहां निश्चित किराये पर भूमि जोतने को मिलती है और यह ... किराया उपज का 70 या 75 प्रतिशत तक होता है। यहां मद्रास सरकार के द्वारा 'फेयर ... रेन्ट एक्ट', 1956 (Fair Rent Act) पारित किया गया जिसका लक्ष्य काश्तकारों को ... सुरक्षा प्रदान करना और भूमि के किराये को उपज का 40 प्रतिशत करना था। इसके बाद ... 1961 में व्यक्ति के पास भूमि की उच्चतम सीमा 30 एकड़ कर दी गई।

1. K. Basu and S. K. Bhattacharya, *Land Reform in West Bengal* (1963).
2. Andre Beteille, *op. cit.*, p. 77.

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि भारत में भूमि सुधार के लिए उठाये गए कदमों एवं कार्यक्रमों के माध्यम से निम्नांकित कार्य किये गए : (i) मध्यस्थों एवं जमींदारों का उन्मूलन किया गया, (ii) काश्तकारी व्यवस्था में सुधार किया गया, (iii) जोतों (Land holdings) की अधिकतम सीमा का निर्धारण किया गया तथा, (iv) कृषि का पुनर्गठन किया गया जिसके अन्तर्गत छोटे-छोटे भूमि के टुकड़ों की चकबन्दी की गई, सहकारी खेती प्रारम्भ की गई, भूदान कार्यक्रम को अपनाया गया तथा भूस्वामित्व का रिकार्ड रखा जाने लगा।

स्पष्ट है कि पिछले करीब चालीस वर्षों में देश के विभिन्न भागों में भूमि सुधार से सम्बन्धित अनेक अधिनियम पारित किए गए। प्रत्येक राज्य में वहां की विशिष्ट परिस्थितियों और समस्याओं को ध्यान में रखते हुए अधिनियम बनाये गए। भूमि सुधार कानून किस-किस राज्य में अपने इच्छित लक्ष्यों की पूर्ति में कहां तक सफल हो सके, यह कुछ सीमा तक व्यापक राजनीतिक समस्याओं और प्रशासनिक तन्त्र की कुशलता पर निर्भर रहा है। यहां एक मौलिक प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि क्या अधिनियमों की सहायता से एक कम संस्तरणात्मक कृषि संरचना निर्मित हो पाई अथवा क्या ये कानून की पुस्तक की शोभा बढ़ाने मात्र तक सीमित रहे? क्या इन विभिन्न अधिनियमों से ऐसे कृषिक स्तरों का निर्माण हो सका है जो करीब-करीब एक-दूसरे के समकक्ष हों और जो समानता के आधार पर एक-दूसरे से प्रतिस्पर्द्धा कर सकें।

## भूमि सुधार अधिनियमों का प्रभाव
### (IMPACT OF LAND REFORM LEGISLATIONS)

(1) **परम्परागत कृषि संस्तरण में परिवर्तन—आन्द्रे बिताई**[1] ने बताया है कि इसमें कोई सन्देह नहीं है कि भारत में परम्परागत कृषिक संस्तरीय प्रणाली के सबसे ऊपरी भाग के महत्व को घटा दिया और स्वरूप भी बदल दिया गया है। यह कहना तो ठीक नहीं होगा कि भूमि सुधार ही इसका एकमात्र कारण है, लेकिन इसने निश्चित रूप से इसमें प्रमुख भूमिका निभाई है। पिछले पन्द्रह वर्षों में बहुत से बड़े जमींदारों, तालुकेदारों तथा जागीरदारों की अवनति हुई है और उनके साथ न केवल भूमि के स्वामित्व का एक विशिष्ट स्वरूप ही समाप्त हुआ है बल्कि 'सामन्ती' प्रकार के जीवन के ढंग के बहुत से तत्व भी।

(2) **भू-स्वामियों के प्रभुत्व का ह्रास**—भूमि सुधारों का एक प्रभाव यह पड़ा कि बड़े-बड़े जागीरदारों-जमींदारों की, जिनकी देश के विभिन्न भागों में; जैसे ग्रामीण बंगाल, राजस्थान तथा अन्य कई राज्यों में आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक मामलों में प्रभुत्वशाली स्थिति थी, अब वह स्थिति नहीं रही। परम्परागत कृषि संरचना के सबसे ऊपरी भाग वाले लोगों के पास यद्यपि भूमि तो काफी मात्रा में थी, परन्तु उनका वास्तविक कृषि कार्यों से नहीं के बराबर सम्बन्ध था। वे दूसरों को किराये पर या बटाईदारी में भूमि जोतने को देते थे; अनुपात पहले की तुलना में घट गया है। अब कृषि के माध्यम से आर्थिक लाभ के अवसर बढ़ गए हैं। इससे प्रेरित होकर कुछ पूर्ववर्ती जागीरदार और जमींदार कृषि कार्य में अधिक प्रत्यक्ष रूप से भाग लेने लगे हैं। आजकल कई जमींदार स्वयं 'पूंजीपति किसान' (Capitalist Farmers) बन गए हैं। अब वे अपने खेतों पर और कुछ नहीं तो देख-रेख का ही कार्य करने लगे हैं। यद्यपि आज भी उनकी आय काफी है, परन्तु अब उन्हें वह सम्मान या प्रतिष्ठा

1 Andre Beteille, *op. cit.*, p. 78.

अब नहीं है जो किसी समय जागीरदार के रूप में थी। वर्तमान में पंजाब, हरियाणा तथा भूस्वामी उत्तर प्रदेश में 'सामन्ती' प्रकार के भू-स्वामी की बजाय 'आर्थिक' प्रकार के भू-स्वामी का महत्व बढ़ा है।

(3) **नवीन प्रकार के भू-स्वामियों का उदय**—यहां इस ओर ध्यान देना भी आवश्यक है कि इस नवीन प्रकार के भू-स्वामी का उदय जो वैज्ञानिक उपकरणों की सहायता से खेती करने की ओर अग्रसर है, कुछ ही लोगों के हाथ में भूमि के केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति को किस सीमा तक बदल पाया है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि बड़ी-बड़ी जागीरें जिनका क्षेत्र सैकड़ों मीलों अथवा कई गांवों तक विस्तृत था, समाप्त प्रायः हो चुकी हैं, परन्तु आज भी 100 से 200 एकड़ के खेत या फार्म कई लोगों के पास हैं। इन लोगों ने भूमि की उच्चतम सीमा सम्बन्धी कानूनों से बचने के लिए भूमि का विभाजन अलग-अलग व्यक्तियों के नाम दिखा अवश्य रखा है, परन्तु वास्तव में पूरे 'फार्म' पर एक ही परिवार का अधिकार है।

**आन्द्रे बिताई** ने बताया है कि कुछ लोग उचित आकार के खेत के स्वामी या नियन्त्रक हैं जबकि अधिकांश कृषक परिवारों के पास छोटे खेत ही हैं। नेशनल सैम्पल सर्वे (National Sample Survey) द्वारा समय-समय पर जो आंकड़े दिए गए हैं, वे विभिन्न आकार की जोतों के वितरण में कोई परिवर्तन व्यक्त नहीं करते। आन्द्रे बिताई तथा अन्य विद्वानों द्वारा किए गए अध्ययनों से ज्ञात होता है कि भारत में भूमि वितरण सम्बन्धी असमानता काफी मात्रा में व्याप्त है।

सन् 1976-77 में जहां देश में कुल कार्यशील जोतों की संख्या 8.15 करोड़ थी, वहां 1980-81 में यह बढ़कर 8.94 करोड़ तथा 1990-91 में 10.53 करोड़ हो गई। इनमें से **सीमान्त एवं लघु जोतों** की संख्या कुल जोतों की करीब 75 प्रतिशत है। **एक हेक्टेयर से कम वाली जोतों की सीमान्त जोत** (Marginal Holding) तथा **एक हेक्टेयर से अधिक, किन्तु दो हेक्टेयर से कम वाली जोतों को लघु जोत** (Small Holding), 2 से 4 हेक्टेयर तक जोतों को अर्द्ध-मध्यम जोतें, 4 से 10 हेक्टेयर तक को मध्यम जोतें तथा 10 हेक्टेयर या उससे अधिक को वृहत् जोतें माना गया है।

यद्यपि आज अकृषक भू-स्वामी या अनुपस्थित प्रकार के भू-स्वामी जो अकृषक कार्यों में लगे हुए हैं, अपनी भूमि को बेचने की ओर प्रवृत्त हैं, परन्तु इससे हमें यह नहीं समझ लेना चाहिए कि भूमि का अधिक लोगों में वितरण हो रहा है। स्थिति यह है कि खेतों से उत्पन्न वस्तुओं की कीमतों के तेजी से बढ़ने का आर्थिक लाभ उठाने हेतु बड़े भू-स्वामी और अधिक भूमि खरीद कर अपने खेतों का आकार बढ़ाना चाहते हैं। यहां इस दृष्टि से विचार करना भी आवश्यक है कि नवीन किस्म के उत्पादक प्रबन्धों की व्यवस्था में विभिन्न व्यक्तियों के बीच पाये जाने वाले सम्बन्ध पुरानी उत्पादक व्यवस्था की तुलना में कम अथवा अधिक संस्तरणात्मक हैं।

यह कहा जा सकता है कि नवीन उत्पादक व्यवस्था संस्तरण के परम्परागत प्रतिमान के महत्व को कम करने में सहायक है। 'आर्थिक' भू-स्वामी स्वयं भी किसी न किसी रूप में खेत पर काम करता है। वह कभी खेत में ट्रैक्टर चलाता है तो कभी कोई अन्य कार्य करता है और कभी निरीक्षणकर्ता के रूप में अन्य लोगों द्वारा किए जाने वाले कार्यों की देख-रेख करता है।

(4) भूमि सुधार कार्यक्रमों के फलस्वरूप जमींदारों द्वारा काश्तकारों का जो शोषण होता था उसका अन्त हुआ है। अब वे उनसे बेगार नहीं ले सकते।

(5) भूमि सुधार कार्यक्रमों के फलस्वरूप उत्पादन में भी वृद्धि हुई है क्योंकि अब किसान लगन से काम करने लगे हैं।

(6) जमींदारी उन्मूलन से कृषकों का सरकार से सीधा सम्बन्ध स्थापित हो गया है जिससे उनको सरकारी सहायता मिलने में आसानी हो गई है।

(7) भूमि सुधार कानूनों से सामन्तवाद का अन्त हो गया है अब कृषक लोकतन्त्र एवं समाजवाद में भाग ले सकते हैं।

(8) इन कानूनों से किसानों की दशा सुधरी है एवं उनकी उन्नति हुई है। भूमिहीन कृषकों को भूमि प्राप्त हुई है।

(9) इन कानूनों से पंचायतों की आय में वृद्धि हुई है क्योंकि उन्हें बंजर एवं चरागाह भूमि का प्रबन्ध करने का अधिकार मिल गया है। इस आय को वे गांव के विकास कार्य में लगा सकते हैं।

(10) भूमि सुधार कार्यक्रमों से ग्रामीण रोजगार में वृद्धि हुई है।

(11) इन अधिनियमों से भूमि के असमान वितरण में कमी आयी है।

(12) इन अधिनियमों से सहकारी कृषि को प्रोत्साहन मिला है।

(13) इनके कारण गांवों में वर्ग संघर्ष पर रोक लगी है।

(14) **भू-स्वामी एवं काश्तकार के बीच अन्तर की समाप्ति—आन्द्रे बिताई** ने इस सम्बन्ध में बताया है कि पहले वाली उत्पादक व्यवस्था में भूमि के स्वामित्व और हाथ से काम करने में विपरीत प्रकार का सम्बन्ध था। जब भू-स्वामी स्वयं भी किसी न किसी रूप में खेत पर काम करता है, तो उसके और उसकी खेत पर काम करने वाले श्रमिकों के बीच की एक महत्वपूर्ण बाधा समाप्त हो जाती है, चाहे भू-स्वामी की जोत का आकार कितना ही बड़ा और श्रमिकों का वेतन कितना ही कम क्यों न हो। स्पष्ट है कि नवीन परिस्थितियों ने उत्पादन सम्बन्धों को पहले की तुलना में कुछ कम संस्तरणात्मक बनाने में योग दिया है। आज बड़े भू-स्वामी भी आस-पास के खेतों को किराये पर लेकर अपने खेतों के आकार को बढ़ाने की ओर प्रयत्नशील हैं। ऐसी स्थिति में आज कई भू-स्वामी साथ ही काश्तकार भी हैं और ऐसी दशा में भू-स्वामी और काश्तकार के बीच पाये जाने वाले कई अन्तर अब धीरे-धीरे कम होते जा रहे हैं, परन्तु समाप्त नहीं। परन्तु आज भी वास्तविकता यह है कि पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश तथा देश के अनेक भागों में भूमि के वितरण के सम्बन्ध में अनेक असमानताएं पाई जाती हैं।

**प्रश्न यह उठता है कि भूमि सुधार सम्बन्धी विभिन्न अधिनियमों के पारित होने के उपरान्त भी कृषि क्षेत्र में सभी मध्यस्थों से छुटकारा प्राप्त क्यों नहीं किया जा सका और काश्तकारों एवं भूमिहीन श्रमिकों का शोषण क्यों नहीं रोका जा सका?** कृषिक सामाजिक संरचना में ही कुछ ऐसी विशेषताएं मौजूद हैं जिनकी वजह से इच्छित परिवर्तन नहीं लाये जा सके। सर्वप्रथम हम पाते हैं कि स्वयं कानून में 'कृषक' (Cultivator) की परिभाषा में उन लोगों को भी सम्मिलित कर लिया गया जो स्वयं खेती तो नहीं करते, परन्तु जो भू-स्वामी हैं। यह मौजूदा सामाजिक व्यवस्था से एक समझौता था, क्योंकि ब्राह्मण एवं राजपूत, आदि उच्च जातियों

जो भू-स्वामी तो हैं, परन्तु अधिकांशतः स्वयं खेती नहीं करते ऐसे लोगों को भी 'कृषक' की परिभाषा के अन्तर्गत ले लिया गया। डेनियल थोर्नर ने बताया है कि यह वास्तव में परम्परागत भारतीय समाज के संस्तरणात्मक मूल्यों के प्रति एक छूट थी।[1] न केवल कानूनों के निर्माण में बल्कि उनके क्रियान्वयन में अधिकारियों तक के द्वारा भू-स्वामियों की उच्चता को स्वीकार किया गया है। **भूमि सुधार प्रयत्नों की असफलता का एक प्रमुख कारण प्रशासकीय अकुशलता या अधिकारियों का कमजोर वर्ग के लोगों के प्रति उपेक्षा का भाव रहा है।** परिणाम यह हुआ है कि दूसरों की भूमि को किराये पर जोतने वाले काश्तकार और भूमिहीन श्रमिक जिनके लाभ के लिए समय-समय पर विभिन्न अधिनियम पारित किए गए, लाभान्वित नहीं हो सके।

**यहां किराये पर भूमि लेकर जोतने के प्रचलन की पूर्ण समाप्ति व्यवहार रूप में कठिन है।** भूमि पर जनसंख्या के अधिक भार के कारण भू-स्वामी और काश्तकार दोनों ही भूमि के छोटे से टुकड़े से अपना जीवन-निर्वाह करते हैं। काश्तकार भी आर्थिक कारणों की बजाय स्थिति या प्रतिष्ठा सम्बन्धी कारणों से भूमिहीन श्रमिकों के रूप में कार्य करने की बजाय दूसरों की भूमि किराये पर जोतने या बटाईदारी में खेती करने को ज्यादा पसन्द करते हैं। उदाहरण के रूप में, कृषक जातियां; जैसे जाट, आदि श्रमिकों के बजाय काश्तकारों या बटाईदार के रूप में कार्य करना अधिक उत्तम समझती हैं, चाहे आर्थिक दृष्टि से यह लाभप्रद नहीं भी हो।

आज किराये पर भूमि जोतने वाले काश्तकारों अथवा बटाईदारी में खेती करने वालों की स्थिति अनेक कानूनों के उनके पक्ष में होने के बावजूद भी काफी अस्पष्ट है। पहले भूस्वामी बटाईदारी में खेती को एक अच्छी व्यवस्था समझते थे, लेकिन आज वे ऐसे बटाईदार या किराये पर भूमि जोतने वाले काश्तकार को भूमि पर से बेदखल करके उस भूमि को स्वयं जोतना या उसे कृषि श्रमिकों से व्यक्तिगत देख-रेख में जुतवाना लाभप्रद समझते हैं। इससे कम से कम वे इस भय से तो मुक्त हो जाते हैं कि नये-नये कानूनों के बनने से कहीं उनकी भूमि पर काश्तकारी का अधिकार नहीं हो जाए, कहीं वह भूमि का मालिक नहीं बन जाये। आज पट्टेधारी काश्तकार (tenant) की स्थिति इस दृष्टि से अनिश्चित और असुरक्षित है कि शक्तिशाली भू-स्वामी उसे भूमि पर से बेदखल करने और उसके द्वारा जोती जाने वाली भूमि को स्वयं के प्रत्यक्ष नियन्त्रण में लेने में सफल हो जाता है, परन्तु जहां किराये पर भूमि जोतने वाला कोई काश्तकार भूमि पर अपना कानूनी अधिकार स्थापित करने में सफल हो जाता है, वहां उसे पहले के समान अपने भू-स्वामी की कृपा पर निर्भर नहीं रहना पड़ता। ऐसे काश्तकार की आर्थिक स्थिति में भी सुधार की सम्भावना अधिक रहती है। यद्यपि कुछ क्षेत्रों में काश्तकारों की स्थिति में थोड़ा-बहुत सुधार हुआ है, परन्तु सम्पूर्ण देश की दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि **कानूनों के काश्तकारों के पक्ष में होने के उपरान्त भी उनकी वास्तविक स्थिति न केवल अनिश्चित बल्कि साथ ही असुरक्षित भी है।** तथ्यों से इतना अवश्य ज्ञात होता है कि जहां काश्तकारों और भूमिहीन श्रमिकों को संगठित राजनीतिक शक्तियों का समर्थन मिला है, वहां उनकी स्थिति में सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से सुधार हुआ है।

1. Thorner, *op. cit.*

**भूमि सुधार कार्यक्रमों का मूल्यांकन** (Evaluation of Land Reforms Programmes)

भारत में स्वतन्त्रता के उपरान्त भूमि सुधार के कई कार्यक्रम बड़े उत्साह से प्रारम्भ किए गए जिनके अन्तर्गत जमींदारी उन्मूलन, अधिकतम जोत सीमा-निर्धारण, चकबन्दी, सहकारी खेती एवं लगान नियम एवं पट्टे की सुरक्षा की व्यवस्था की गई है। इससे भूमि सुधार की ओर प्रशंसनीय प्रगति हुई है। **संयुक्त राष्ट्र की भूमि सम्बन्धी एक रिपोर्ट** में उल्लेख किया गया है कि ''भारत में भूमि सुधार के हाल के अधिनियम संख्यात्मक दृष्टि से सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं। इतने अधिनियम कहीं भी नहीं बनाये गए हैं। ये अधिनियम लाखों, करोड़ों कृषकों पर प्रभाव डालते हैं और भूमि के विशाल क्षेत्रों को अपने दायरों में सम्मिलित करते हैं। लेकिन ऐसा होने पर भी भूमि सुधार कार्यक्रमों की प्रगति धीमी रही है।'' **प्रो. दान्तवाला** का मत है कि ''अब तक भारत में जो भूमि सुधार हुए हैं या निकट भविष्य में होने वाले हैं वे सभी सही दिशा में हैं, लेकिन क्रियान्वयन के अभाव में इनके परिणाम सन्तोषजनक नहीं रहे।'' **प्रो. गुन्नार मिर्डल** ने अपनी पुस्तक *'Asian Drama'* में लिखा है, ''भूमि सुधार कानून जिस ढंग से क्रियान्वित किए गए हैं उससे सामान्यतः उनकी भावनाओं और अभिप्राय को हताश होना पड़ा है।''

**आन्द्रे बिताई** ने भूमि सुधारों का मूल्यांकन करते हुए बताया है कि तथ्यों के सूक्ष्म अवलोकन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि भारत में **भूमि सुधार कृषिक सामाजिक संरचना में व्याप्त मौलिक असमानताओं को समाप्त या कम करने में असफल रहे हैं।** भूमि-सुधार से किराये पर जोती जाने वाली भूमि के क्षेत्र में अवश्य कमी आयी है और उच्च मध्यस्थों के अधिकार भी समाप्त हुए हैं। परन्तु इससे भूमि के स्वामित्व का केन्द्रीकरण कम नहीं हुआ है और न ही उन छोटे काश्तकारों की स्थिति में सुधार हुआ है जो केवल मौखिक रूप से निर्धारित शर्तों के आधार पर किराये पर भूमि जोतते हैं या जो बटाईदार के रूप में खेती करते हैं।[1] इस सम्बन्ध में **जी. पी. मिश्रा** ने अपने अध्ययन के आधार पर लिखा है कि भूमि सम्बन्धों की मौलिक संरचना वैसी की वैसी बनी हुई है जैसा कि भू-स्वामी कृषक, किराये पर भूमि जोतने वाले काश्तकार तथा भूमिहीन कृषि श्रमिकों की कृषक बनावट से व्यक्त होता है।[2] **कृषि के क्षेत्र में हरित क्रान्ति का विशेष लाभ बड़े भू-स्वामियों को मिला है और इससे असमानता और निर्धनता कम नहीं हो पाई है।** इसका मूल कारण यह है कि पंचवर्षीय योजनाओं में नवीन कृषि प्रौद्योगिकी को काम में लेते हुए कृषि उत्पादन को बढ़ाने पर तो विशेष जोर दिया गया, लेकिन उत्पादित वस्तुओं के समुचित वितरण और सामाजिक न्याय पर कम। अतः कृषि संरचना में परिवर्तन की प्रक्रिया न तो कमजोर वर्ग के लोगों की संख्या को घटाने और न ही उनकी आर्थिक दशा को सुधारने में सफल हो सकी।

विडम्बना यह भी है कि भारत जैसे कृषि प्रधान देश की नीतियां तो किसान विरोधी हैं एवं अमेरिका, यूरोपीय देशों एवं जापान जैसे उद्योग प्रधान देशों की नीतियां किसान समर्थक हैं। एक बात और भी है, भारत में राजस्व के प्रशासन का सारा ढांचा ब्रिटिश राज की देन है और हमारी गुलामी की याद दिलाता है और आज भी हम भारतीय किसानों को गुलामी की विडम्बनाओं से मुक्त करना नहीं चाहते हैं।

1 *Ibid.*, p. 86.
2 G. P. Mishra, *Some Apects of Change in Agrarian Structure* (1977) p. 72.

उत्पादन और इससे सम्बन्धित भूमि सम्बन्धों की कृषिक संरचना को इस दृष्टि से बदलें कृषि क्षेत्र में उत्पादित वस्तुओं का न्यायोचित तरीके से वितरण हो सके, यह दृढ़ राजनीतिक संकल्प या निश्चय पर निर्भर करता है न कि नियोजन पर। अभी तक के भूमि सुधार प्रयत्नों से यही प्रमाणित होता है। भूमि सम्बन्धों की कृषि संरचना में परिवर्तन लाने हेतु आवश्यक है कि **भूमि का कमजोर वर्ग के लोगों में अधिकाधिक वितरण किया जाए और कृषि हेतु आवश्यक सुविधाएं प्रदान की जाएं।** ऐसा करने से एक समतावादी कृषिक व्यवस्था का उदय हो पायेगा और कृषि क्षेत्र में उत्पादित वस्तुओं का लाभ कुछ बड़े भू-स्वामियों व आर्थिक किसानों को ही नहीं मिलकर काश्तकारों, बटाईदारों एवं कृषि श्रमिकों को भी मिल पायेगा।

**भूमि सुधार कार्यक्रमों की सफलता** के लिए आवश्यक है कि : (i) भूमि सम्बन्धी नवीन कानून तैयार किया जाए जिसमें स्वामित्व का विकास समाप्त हो, (ii) कुशल प्रशासकीय मशीनरी स्थापित की जाए, (iii) खेतिहर श्रमिकों के संघ बनें एवं उनके प्रतिनिधियों को भूमि सुधार कार्यक्रमों में सम्मिलित किया जाए, (iv) भूमि सुधार कानूनों का प्रचार-प्रसार किया जाए, (v) कानूनों को लागू करने की सरल विधियां अपनाई जाएं, (vi) नये कृषकों के लिए वित्तीय संसाधनों का प्रबन्ध किया जाए।

## प्रश्न

1. आन्द्रे बिताई के द्वारा किए गए अध्ययन के विशेष सन्दर्भ में 'भारत में कृषिक सम्बन्ध' पर एक लेख लिखिए।
2. भारतीय कृषि के क्षेत्र में व्याप्त निर्धनता पर प्रकाश डालिए।
3. भूमि-सुधार अधिनियमों का कृषि-संरचना पर प्रभाव दर्शाइए।
4. कृषिक सम्बन्धों की विवेचना भारतीय स्थिति के सन्दर्भ में कीजिए।